

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2021; 3(1): 226-227
Received: 07-01-2021
Accepted: 10-02-2021

डॉ. रंजना ग्रेवर

सह-आचार्य (संगीत), सी.एम.के.
नेशनल पी.जी. गर्ल्स कॉलेज,
सिरसा, हरियाणा, भारत

सांगीतिक वाद्यों में तत् वाद्यों का महत्व एवं वादन सामग्री

डॉ. रंजना ग्रेवर

सारांश

स्वर व ताल की अभिव्यक्ति करने वाले उपकरण भारतीय संगीत में वाद्य कहे जाते हैं। वाद्य एक ऐसा उपकरण है जो संगीतात्मक ध्वनि का बोध करवाता है वाद्य शब्द बहुत ही व्यापक है इसकी सुनिश्चित परिभाषा किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती फिर भी वाद्य का तात्पर्य उस उपकरण से माना गया है। जिससे घर्षण, आघात फूँने आदि की प्रक्रिया करने से ध्वनि उत्पन्न होती है। जैसे मनुष्य का शरीर भी वाद्य के रूप में नाद उत्पन्न करने का माध्यम बनता है। इसीलिए उसे शरीरी वीणा अथवा दैवी नाम दिए गए हैं। वाद्यों का वर्गीकरण, प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में क्या है? इसका अवलोकन किया है।

कुटशब्द: वाद्य, वादन सामग्री, स्वर व ताल, दैवी

प्रस्तावना

वाद्यों का वर्गीकरण

वर्गीकरण किसी भी विषय में प्रत्येक पक्ष को महत्वपूर्ण बना देता है। विश्व संगीत के इतिहास में पुरातन समय के संगीतज्ञों द्वारा भारत में ही सर्वप्रथम हाथों को वैज्ञानिक आधार पर वर्गीकरण, क्रमबद्ध रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने सभी हाथों को मुख्य घाट वर्गों में विभाजित किया, भले ही वह किसी भी राष्ट्र अथवा राष्ट्रीयता से सम्बन्धित हो। यह वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में है।

1. तन्त्र वाद्य (तार वाले वाद्य)
2. सुषिर वाद्य (हवा के प्रवेश से ध्वनि की उत्पत्ति करने वाले)
3. अवनद्ध वाद्य (चमड़ाकृत वाद्य)
4. धन वाद्य (कांस आदि धातुओं से निर्मित वाद्य) आधुनिक समय में भी वाद्यों के वर्गीकरण का आधार वही चतुर्विध वर्गीकरण है। परन्तु इन वाद्यों की बनावट और वादन विधि के हिसाब से इनके आगे उपवर्ग बनाए जा सकते हैं। इन वाद्य वर्गीकरण का एकमात्र उद्देश्य वादन 'संगीत में तत् वाद्यों' की श्रेणी को रेखांकित करना ही है। चूंकि हमारा शोध कार्य व वाद्यों का महत्व ही है।

“तत् वाद्यों का महत्व” तत् शब्द तन धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है विस्तार करना। तत् धातु में त् प्रत्यय लगाकर ततम् शब्द बनता है। जिसका अर्थ है जिसमें स्वर व्याप्त हो ओर उसका विस्तार किया जाए। अतः ततम् शब्द वीणा सितार, सरोद, दिलरूबा, अथवा अन्य तारों या तन्तुओं में व्याप्त स्वर का विस्तार करने वाले वाद्यों तथा जिनको बजाने के लिए कोण, गज या उंगली का प्रयोग किया जाता हो। वाद्यों के बिना संगीत शास्त्र के अस्तित्व की कल्पना भी सम्भव नहीं है। गायन तथा नृत्य की अपेक्षवादन में संगीतात्मक अभिव्यक्ति की संभावना आनन्त है। लोक संगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक एक तारा, रावण हत्या, जन्तर, कमाचचा, सरिन्दा, बनन, स्वाव, वीणा के विभिन्न प्रकार जैसे- सुरबहारे, सुर सिंगार, सितार, सरोद, सांरगी, इसराज, ताऊस, दिलरूबा, वायलिन, संतुर, सरमण्डल, तानपुरा इत्यादि तत् वाद्यों का वर्चस्व इन की प्रचलन से लेकर अब तक सर्वोपरि है।

डा० सुरेश वृत्त राय तत् वाद्यों के महत्व को कुछ इस तरह से भी स्वीकारते हैं:-

‘नाद सागर आगाध है। जिसे पार करना सरल नहीं है नाद सागर में डूबने के भय से तैरना सीखने वालों की भान्ति स्वयं सरस्वती ने अपने पक्ष से दो तुम्बियों वाली वीणा लगा रखी है। जिससे वह नाद महासागर में सुरक्षित होकर संतरण कर सके। नादाब्धे: परे तार न जानाति सरस्वती, मज्जन अर्थात् अघादि तुब वहति वदासि।।

डूबने के भय से थें तुबा लेकर तैरने वालों की भान्ति वीणा का आश्राय लिए सरस्वती की जब यह दशा फिर सामान्य जनों की नया दशा होगी। इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गायन व नृत्य की अपेक्षा सुक्ष्मता तथा ध्वनिप्रधान होने के कारण वादना को स्थूल जगत से सुक्ष्म एवं अमूर्त नाद की यात्रा का अन्तिम सोपान माना जा सकता है। कंठ से निकले स्वर का स्थान निर्धारण प्रक्रिया द्वारा श्रुतियों का प्रत्यक्षीकरण वाद्यों पर ही संभव है। यह बात केवल सैद्धान्तिक नहीं है,

Corresponding Author:

डॉ. रंजना ग्रेवर

सह-आचार्य (संगीत), सी.एम.के.
नेशनल पी.जी. गर्ल्स कॉलेज,
सिरसा, हरियाणा, भारत

बल्कि भारतीय सगीत के अध्येता तथा सगीत के अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारतीय सगीत के प्रतिनिधि विद्वान डा० लाल मीण मिश्र ने प्रचलित रूद्र वीणा में आवश्यक परिवर्तन कर के सारणा प्रक्रिया द्वारा वीणा पर भरत के वज्ज तथा मध्यम ग्राम के स्वरों सारणी चतुष्टयी द्वारा उद्भूत बाईस श्रुतियों तथा उनके अन्तरालों को वाघों पर स्पष्ट सुनने व परखने की विधि का सफल प्रयोग किया है। उनकी श्रुति वीणा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में सुरक्षित है। इसी प्रकार सारिकायुक्त वाघों पर सारिकाओं की सहायता से शुद्ध, कोमल तथा तीव्र स्वरों को वैज्ञानिक रीति से समझना तथा समझाना सम्भव है।

स्वरों की अन्दोलन संख्या, गुणान्तर अन्दोलन संख्या से लम्बाई निकालकर सर

स्थान, निर्धारण करना वाघों पर ही संभव है। श्री निवास अन्दोलन ने तारों की लम्बाई के विभिन्न भागों में शुद्ध व कोमल सर स्थान निश्चित करने तथा सारिकाओं द्वारा निश्चित स्थानों को अंकित करने का प्रयोग वीणा पर किया। भरतकृत नाट्य शास्त्र में ध्रुव तथा चल वीणा के माध्यम से तारत्व के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

इस दृष्टि से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि तत्व वाघों पर ही स्वरों के स्थान-निर्धारण की प्रक्रिया सम्भव है। तत् वाघों के द्वारा सहायक नादों व अनुवादों इत्यादि के माध्यम से ध्वनि में एक समृद्धता आ जाती है। तत् वाघों के महत्व को समझते हुए 3 असद अली खां साहब कहते हैं कि स्वरों की स्थापना और श्रुतियों की व्यवस्था सर्वप्रथम वीणा के स्वर पर ही की गई और प्रारम्भ से ही गायक कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन बिना वाघ की सगीत के सफल रूप में प्रस्तुत नहीं कर सका। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि गायक गायन में अपना मूल स्वर कायम रखने के लिए वाघों की सहायता लेता है। इस बात का प्रमाण किसी गायक के हाथ में उसका तानपुरा है।

आप आगे कहते हैं कि प्रत्येक गले से निकलने वाली आवाज हर एक श्रुति का प्रकट करने में असमर्थ है। जबकि वाघों में यह समर्थत्व पाया जाता है। कई बार गले की कुछ कमियों को भी वाघ-सम्पूर्णता प्रदान करते हैं।

किसी गले से निकलने वाली आवाज का समर्थत्व तीन सप्तक या 3.5 सप्तक हो सकता है। परन्तु वाघों में इसकी अधिकता 7.5 सप्तक तक का समर्थत्व रखने की बात भी कहते हैं। सगीत (मासिक) पत्रिका में प्रकाशित विद्वान गायक एव सर्जक प० जितेन्द्र अभिषेकी जी ने एक साक्षात्कार में वाघों की श्रेष्ठता की बात कही है। कष्टयु संगीत की बजाए वाघ संगीत की बजाए वाघ संगीत की अत्याधिक लोकप्रियता का कारण मुख्य रूप से उसकी वाक् विहीनता ही है। वाघ संगीत वाक् प्रधान न होने कारण विश्वजनीन भाषा व्यक्त करता है। वाघ संगीत में राग प्रस्तुतीकरण के अंत में जिस प्रकार की गति और लय का प्रदर्शन होता है। उस लय में सर्वसाधारण को भी झुमा देने की समर्थ निहित है।

“तत् वाघों की वादन सामग्री (प्राचीन-मध्य-आधुनिक काल) प्राचीन काल – प्राचीन काल में गायन के पोषण अथवा अतिरंजन के लिए वाघों का प्रयोग होता था, गायन के लिए की गई रचनाओं को ही वाघों पर बजाया जाता था, जैसे वरणम्, तिल्लना, कृति इत्यादि नाट्य शास्त्र में कही-2 तत्-वाघों के स्वतन्त्र वादन की चर्चा मिलती है। प्राचीन कालीन सगीत का जो स्वरूप आप हमारे सामने है उसकी सबसे बड़ी समस्या यह है कि स्वर लिपि के आभाव में उसका हमें कोई निश्चित ढांचा नहीं बना पाते। उदाहरण के लिए नाट्य शास्त्र में जाति गायन उल्लेख है। यही जातियां वीणा पर भी केवल कल्पना कर सकते हैं। मध्य काल- मध्यकाल में एक विशेष बात यह हुई कि ‘वादन सगीत’ की स्वतन्त्र परम्परा को अधिक महत्व दिया जाने लगा। तानसेन के पश्चात् उनकी वंश परम्पराओं में तन्त्री वाघों को बहुत ऊँचा

स्थान दिया गया। इनके वंशजों ने तात और तार के बाजों में बहुत उन्नति की। मध्यकाल के चर्चित गन्थ ‘सगीत रत्नाकार’ में वाघक्षरों का उल्लेख मिलता है। वाघाक्षरों के प्रयोग से यह कल्पना की जा सकती है कि वाघों की विशिष्ट रचनाएं उस काल में की जाती होंगी। किन्तु वे रचनाएं क्या थीं अथवा उनका स्वरूप क्या था। साक्ष्य रूप में इसका ज्ञान नहीं हो पाता। आधुनिक काल – आधुनिक काल की 18वीं शताब्दी में गायकों तथा वादकों के घराने बन चुके थे।

वादकों में आधुनिक काल में स्वतन्त्र वादन को परम्परा का तीव्रता से विकास हुआ। 18वीं शताब्दी के आरम्भ में उस्ताद मसीत खाँ ने ध्रुवपद गायकी में हेर-फेर कर के विलम्बित में तन्त्र बाज निकाला तो कालान्तर में उस्ताद रजा खाँ ने द्रुत लय में जवाबी बाज तैयार किया। गतों ने स्वतन्त्र वादन को नई दिशा प्रदान की।

सितार के सैनिया बाज वादक अपनी प्रस्तुति में 12 अगों का प्रयोग करते थे। आलाप, जोड़, गततोड़ा, लाड़ी, गुथी, लड़ गुथ्याव, लड़लपेट, कातर, तार, परन, झाला, ढाक झाला इत्यादि। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि गते अपना स्वतन्त्र अस्तित्व 18वीं शताब्दी के पश्चात् ही बना पाई।

19वीं शताब्दी तत् वाघों का ‘स्वर्णिमी युग’ रहा यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। इस समय सितार वाघ अपने उन्नति के शिवर की ओर अग्रसर हो रहा था। अब तक इस वाघ के कई घराने अस्तित्व में आ चुके थे। इस समय में 30 अमृत सेन, ड० इनायत खाँ, इमदाद खाँ, ड० वरकतुल्ला खाँ और ड० इल्लाही बख्श के नाम विशेष रूप से उल्लेखीय हैं। विषय की पुनरावृत्ति होगी इसलिए यहां यह सार संक्षेप में ही बात करना उचित होगा कि आधुनिक समय में गुणी जनो का मानना है कि सगीत अपनी शुद्धता से हटवार गलत दिशा की ओर जा रहा है और कालाकार आर्थिक व्यय के लिए जन साधारण की मात्र पर कुछ भी बदलाव करते हैं। युवा वर्ग का शास्त्रीय सगीत में रुचि लेना भी एक शास्त्रीय सगीत की उन्नति की ओर अग्रसर होता एक कदम है नई पीढ़ी सगीत को समुचित एवं व्यवस्थित रूप में सीखना चाहती है आधुनिक समय में यह प्रयास कितने सफल होते हैं। यह आने वाला समय ही बताएगा।

संदर्भ

1. सांगी डॉ सुरेश - ब्रजराज
2. संगीत विशारद - बसंत
3. राग परिचय भाग २, ४ - हरिचन्द्र श्रीवास्तव अभिनन्द गीतांजलि